# साहित्य में आदर्श और यथार्थ

डॉ. प्रमिला बी. महानन्दे
जनता महाविद्यालय, चंद्रपुर

**ARTICLE DETAILS**

**Article History**
*Published Online:* 25 May 2019

**Keywords**
साहित्य, धर्म, मापदंड, आदर्श

**ABSTRACT**

साहित्य के संदर्भ में आदर्श का महत्व अधिक है या यथार्थ का, यह प्रश्न उत्तर उठाया जाता है | दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि साहित्यकार को साहित्य सर्जन के प्रसंग में आदर्श को अधिक महत्व देना चाहिए या यथार्थ को ? आदर्शवाद या यथार्थवाद को महत्व देने की दृष्टि से साहित्य में अनेक वादों का प्रादुर्भाव हुआ| अनेक वाद आए और गए किंतु इस समस्या का हल कोई वाद विशेष नहीं कर पाया | साहित्य में आदर्श को प्रश्रय मिले या यथार्थ को इसका निर्णय से पूर्व हमें साहित्य के धर्म उसकी प्रकृति पर श्रेष्ठ साहित्य के संदर्भ में विचार करना होगा| साहित्य की परिभाषा और उसकी श्रेष्ठता के मापदंड के विषय में विभिन्न आचार्यों ने विभिन्न मत प्रकट किए हैं | और मानव जीवन धरती पर जीता है, उसकी गंध की अपेक्षा वह भी कैसे वह कर भी कैसे सकता है ? यदि अत्यधिक आदर्श-प्रेरित होकर वह धरती की उपेक्षा करता है और धरती की जगह स्वर्ग लोक की बात करता है | तो निश्चय ही उसकी कृति में वह स्वाभाविकता और विश्वसनीयता नहीं आ पाएगी जो साहित्य का प्राण है |

**प्रस्तावना:**

संस्कृत साहित्य के वाल्मीकि रामायण, महाभारत और श्रीमद् भागवत जैसे कार्यों में इन दोनों प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं वाल्मीकि ने अपने काव्य का नायक ब्रह्म राम को न बनाकर सामान्य मनुष्य के रूप में उन्हें प्रस्तुत किया | जीवन में जो संभव है उनकी उन्होंने कभी उपेक्षा नहीं की, साथ ही जो काम्य में है उसको भी बड़े यत्न से प्रस्तुत किया पाठक के समक्ष आदर्श और यथार्थ का यह प्रस्तुतीकरण इतने सहज और स्वाभाविक रूप में हुआ है कि वह कब वह कहीं भी आरोपित प्रतीत नहीं होता | राम आदर्श पुरुष है किंतु वहाँ सामान्य मानवीय दुर्बलताओं से ग्रस्त मानव की भी कमी नहीं है | कैकई, कैकईदासी, राक्षसगण आदि को भी यथास्थान महत्व देकर महर्षि ने अपनी संतुलित दृष्टि का ही परिचय दिया है| यदि हम कहना चाहे तो कह सकते हैं कि अपने महाकाव्य के लिए उन्होंने रामचरित का चयन भी इसलिए किया ताकि आदर्श और यथार्थ दोनों पर प्रकाश पढ़ सके| साहित्य के माध्यम से आदर्श और यथार्थ का संप्रेषण इसी प्रकार संभव भी था| यही कारण है कि वाल्मीकि द्वारा उपस्थित आदर्श आरोपित प्रतीत नहीं होते भागवतकार ने भी इसी संतुलित दृष्टि का परिचय दिया है| महाभारत में तो व्यास ने आदर्श और यथार्थ के इस मिश्रण को और भी अधिक प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया है, संसार में जितने प्रकार की अच्छाइयाँ और बुराइयाँ संभव है,| महाभारत में उन सब का परिचय मिल जाएगा| किंतु सब कुछ सामान्य रूप से घटित दिखाया गया है ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन जीने के क्रम में ही सभी घटनायें अनायास घटित होती चली जा रही है | महाभारत की अनेक घटनायें प्रसंग से हटकर आदर्शीकृत या कठोरतम यथार्थ का नग्न नृत्य प्रतीत होता हो सकता है, किंतु साहित्यकार ने आदर्श एवं यथार्थ दोनों का ही संयोजन इस कौशल से किया है कि सब कुछ यथा आदर्शीकृत प्रसंग घटित प्रतीत होता है| संस्कृत के इन पौराणिक काव्यकारों की विशेषता यह है कि उन्होंने आदर्श या यथार्थ पर एकांगी बल नहीं दिया है कालिदास, भवभूति आदि परिवर्ती संस्कृत में रचनाकारों की प्रवृत्ति भी लगभग व्त ही रही है कि " अभिज्ञान शाकुंतलम् " और उत्तररामचरित्र जैसे ग्रंथों में इन कवियों ने भी जीवन के यथार्थ को विशेष महत्व दिया है| .संस्कृत के इन कवियों में यथार्थ के नाम पर जीवन की कुंठा और घुटन को उभारने पर ही दृष्टि केंद्रित करने की प्रवृत्ति नहीं पाई, जो पाश्चात्य प्रभाव के कारण हिंदी के आधुनिक कवियों एवं रचनाकारों में देखने को मिलती है |

आदिकालीन हिंदी साहित्य में भी यथार्थ और आदर्श का मिश्रण पाया जाता है पृथ्वीराजरासो जैसे महाकाव्यों जहाँ आदर्श को अधिक महत्व दिया गया है वहाँ विद्यापति ने मुक्तकंठ से श्रृंगार की प्रशंसा करके यथार्थ दृष्टि का परिचय दिया है|

RRIJM 2015, All Rights Reserved

भक्तिकालीन कवियों में कबीर जैसे संतों का स्वर काफी तीखा प्रतीत होता है इसके मूल में उनकी यथार्थवादी दृष्टि ही कार्यरत है | तुलसी और सूर ने भी अपने ढंग से आदर्श और यथार्थ का ही रूप प्रस्तुत किया है| ऊपर में जिन संस्कृत और हिंदी के जिन साहित्य की चर्चा हुई है, उनमें वैसे तो आदर्शवादी दृष्टि की ही प्रधानता है पर जहाँ कहीं उन्होंने यथार्थ को प्रस्तुत करने का उपक्रम किया है उनका झुकाव आदर्श को प्रश्रय देने की ओर ही रहा है | उनका यथार्थ चित्रण कभी भी अपने आप में साध्य नहीं रहा है | यदि इसके मूल में जाने का प्रयास करें तो हमें प्रतीत होगा कि यहाँ भी भारतीय जीवन दृष्टि ही व्याप्त है जिसने कला, कला के लिए जो काम्य में है उसकी ही विजय दिखाई गई है रीतिकाल में आकर पहली बार हिंदी साहित्य में जीवन के आदर्श की अवहेलना सी की गई है | रीतिकाव्य के अधिकांश परिचित काव्य में वही बाल-सुलभ भावुकता पाई जाती है जो जीवन के आदर्श को चित्रित करने में तो अक्षम है ही साथ ही साथ वह यथार्थ से भी कतराती रहती है| संभव है रीतिकालीन शयी मनोवृति के उन्हें उस युग में इसी प्रकार की रचनाओं का सम्मान होता हो, किंतु साहित्यकार का जो पुनीत कर्तव्य है कि वह आदर्श और यथार्थ को साथ-साथ लेकर बढे, उसकी उपेक्षा तो उन्होंने कर ही दी |

आधुनिक काल के आरंभिक चरण में हिंदी में आदर्शवाद का ही बोलबाला दिखाई देता है | इसका कारण संभवत यह रहा है कि हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के रचनाकार देश की तत्कालीन अवस्था को स्वाभाविक न मानकर उसे अँग्रेजो द्वारा उत्पन्न स्थिति मानते थे| अतः उस मानव निर्मित स्थिति का चित्रण करके अपने देशवासियों को और अधिक कमजोर बनाने या उनमें निराशा भरने के बदले वे त्याग और बलिदान की आदर्शवादी प्रतिमा गढ़ने में अधिक कल्याण देखते थे| जन मानस में आक्रोश और बेचैनी तथा देशभक्ति पैदा करने के उद्देश्य से जितने यथार्थ चित्रण की आवश्यकता थी उतना भर वे अवश्य कर दिया करते थे| किंतु उनकी दृष्टि उस आदर्श स्थिति पर ही केंद्रित रहती थी | जिसकी वे प्राप्ति करना चाहते थे |. भारतेंदु युग के अधिकांश कवियों ने इसी भावना से कार्य किया | द्विवेदी युग में भी लगभग यही प्रवृत्ति बलवती रही| दूसरी बात, गद्य विधाएं अब तक खूब सशक्त नहीं बन पाई थी | द्विवेदी युग के लेखकों का अधिकांश समय गद्य और पद्य की भाषा के समन्वय में ही व्याप्त हुआ | यह एक तथ्य है कि गद्य के द्वारा सामाजिक यथार्थ पर प्रकाश डालने में अधिक सुगमता होती है जबकि कविता कल्पना और आदर्श के आवरण में ही अधिक लुभावनी लगती है | प्रेमचंद और प्रसाद के समय तक आते-आते हिंदी गद्य की भाषा काफी सशक्त हो चुकी थी तथा पाश्चात्य-साहित्य के बढ़ते संपर्क ने ही हिंदी के साहित्यकारों को नवीन ढंग से सोचने को प्रेरित करना आरंभ कर दिया था| आधुनिक हिंदी साहित्य में सर्वप्रथम प्रसाद और प्रेमचंद ने अपनी असाधारण प्रतिभा के स्पर्श से साहित्य में आदर्श और यथार्थ का अत्यंत सजीव चित्रण प्रस्तुत किया | प्रसाद ने कवि हृदय पाया था अतः उनमें आदर्श के प्रति अधिक झुकाव स्वाभाविक ही था| अतः उनमें आदर्श के प्रति अधिक झुकाव स्वाभाविक ही था, उनके काव्य और नाटक सभी उनकी उद्दात्त आदर्शवादी भावना से ओत-प्रोत है| प्रसाद में जो आदर्शवाद हम पाते हैं वह कोरी भावुकता नहीं है बल्कि उस महान कलाकार देशभक्त लेखक में देश की वर्तमान दुर्दशा से मुक्ति पाने की इच्छा इतनी बलवती हो उठी थी कि वह यथार्थ से दूर जाकर आदर्श भारत को वर्तमान में उतार लाना चाहते थे| उनके अधिकांश नाटक इसी प्रयास से प्रेरित होते प्रतीत होते हैं, कभी-कभी यह अस्वाभाविक लगता है कि देश में जब गुलामी की जंजीर काट फेंकने को आकुल हो रहा था, तब प्रसाद ने अतीत भारत के चित्रण पर क्यों अपनी दृष्टि केंद्रित कर रखी थी ? किंतु यदि हम उनके काव्य और नाटकों में गहराई से प्रवेश करें तो पावेगे कि उनके सारे का सारा प्रयास वर्तमान में उस भूतकालिक आदर्श को उतारने से प्रेरित है| लेकिन प्रसाद ने जीवन के कटु यथार्थ की सर्वथा उपेक्षा ना करके आँशु जैसे काव्यों एवं ध्रुवस्वामिनी जैसे नाटकों में यथार्थ की कटुता को उपस्थित करने में समान रूप से सिद्धहस्त प्रतीत होते हैं | प्रसाद की भांति प्रेमचंद भी अपने आरंभिक उपन्यासों में आदर्श की ओर ही अधिक उन्मुख है | कभी-कभी तो उनका यह आदर्शवादी आग्रह इतना अप्रत्याशित और आरोपित हो उठता है कि उनकी कला-शक्ति पर भी संदेह होने लगता है | किंतु गोदान और कफन जैसी परवर्ती कृतियों में प्रेमचंद में आदर्शवाद की यह प्रवृत्ति नहीं रह जाती है, वहां तो एक प्रकार से वह नग्न यथार्थ को चित्रित करने में संलग्न दिखते हैं | प्रेमचंद की इस परवर्ती प्रवृत्ति का हवाला देते हुए कुछ यथार्थवाद के अंध-समर्थक यह सिद्ध करना चाहते हैं कि जीवन की अंतिम घड़ियों में प्रेमचंद का विश्वास आदर्शवाद से डिगने लगा था | किंतु इस कथन में संपूर्ण सत्य नहीं है | यह बात दूसरी है कि प्रेमचंद के बाद वहाँ यह अनुभव किया होगा कि जीवन उतना सुहावना नहीं जितना वह प्रतीत होता है | किंतु प्रेमचंद को यदि यथार्थ का चितेरा मान ले, तो वह वैसे यथार्थ चित्रण में विश्वास नहीं करते, जिसमें केवल जीवन की घुटन, कुंठा और विकृतियों को ही उधार कर छोड़ दिया जाता है | प्रेमचंद साहित्य के उद्देश्य को जानते

RRIJM 2015, All Rights Reserved 

थे जिसके द्वारा मानव को पूर्णता की दशा में उन्मुख किया जा सकता है |

प्रेमचंद के बाद भी अनेक साहित्यकारों ने आदर्श और यथार्थ के चित्रण में संतुलन बनाए रखने का प्रयास किया | किंतु यह भी स्वीकार करना होगा कि यथार्थ चित्रण की यह प्रवृत्ति पाश्चात्य प्रभाव के कारण उत्तरोत्तर बढ़ती गई और वह दोष की सीमा तक पहुँच गई | अत्याधुनिक साहित्य को देखकर इस कथन की सत्यता जानी जा सकती है| किंतु जीवन में जैसे आदर्श और यथार्थ का समान महत्व है वैसे ही साहित्य में भी दोनों का सामंजस्य होना चाहिए|

**निष्कर्ष :**

हिंदी साहित्य के विभिन्न कालों की रचनाओं पर यदि हम दृष्टिपात करे तो हम पायेंगे कि कुछ ही रचनाएँ कालजयी महत्व की है| साथ ही प्रत्येक कृति के संपूर्ण अंश ने कवि की अनुभूति का वरदान पाया ही हो यह भी आवश्यक नहीं, यही कारण है कि हर कृति के समग्र अंश से पाठक समान रूप से प्रभावित नहीं होता कुछ अंश उसे खूब प्रभावित करता है जबकि कुछ स्थलों पर वह अब का अनुभव करने लगता है | साथ ही हमें कृति विशेष में सामाजिक प्रतिबिंब की तलाश करते समय अपने दृष्टिकोण से कृतियों का मूल्यांकन न कर रचनाकारों में खोकर होकर उनकी कृतियों की शक्ति और सीमा का मूल्यांकन करना होगा तभी हम उनके साथ न्याय कर पायेंगे| क्योंकि साहित्य का संबंध भावनाओं से होता है | कुछ कवि स्थूल एवं संबंधों को महत्व देते हैं जबकि कुछ का झुकाव सूक्ष्म एवं भावनाओं के प्रति होता है| उदा. महाकवि चंद ने पृथ्वीराजरासो में अपनी भावना और कल्पना के सहयोग से तत्कालीन समाज को उपस्थित करने का प्रयास किया है |

भक्तिकालीन काव्य को मात्र ज्ञान, भक्ति और परलोक की कथा कहकर अलग नहीं किया जा सकता| संभव है कि तुलसी सूर कबीर आदि ने ज्ञान और भक्ति को विशेष महत्व दिया हो किंतु ज्ञान और भक्ति भी समाज की ही वस्तु है| केवल आर्थिक संघर्ष और वर्य-संघर्ष के चित्रण को ही समाज का वास्तविक प्रतिबिंब नहीं माना जा सकता| | आधुनिक काल में आकर साहित्य प्रचलित अर्थो में अधिकाधिक समाजोन्मुख होता गया यद्दपि सत्य यह है कि श्रेष्ठ साहित्य चाहे प्राचीन हो या नवीन उसका पृष्ठाधार सदा से ही समाज रहा है | किंतु समाज के चित्रण के नाम समाज का विकृत स्वरूप प्रस्तुत करने का समर्थन कभी नहीं किया जा सकता|

**संदर्भ ग्रंथ सूची**

[1]. रस मीमांसा - आचार्य रामचंद्र शुक्ला काशी नागरी प्रचारिणी सभा
[2]. हिंदी काव्य में नियतिवाद - डॉ. रामगोपाल शर्मा
[3]. यथार्थवाद - डॉ. शिवकुमार मिश्र
[4]. वाडमय़ विमर्श - पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र